

संस्कृत वाङ्मय में नारी की सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका

राधावल्लभ त्रिपाठी

संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश, भारत

सार

संस्कृत वाङ्मय भारतीय समाज और संस्कृति की सुदीर्घ परंपरा का दर्पण है, और उसमें नारी का चित्रण सम्मान, नियंत्रण, विद्वत्ता और संघर्ष की बहुरंगी छवियों से बना है। प्रस्तुत शोध-पत्र में वेद, उपनिषद्, स्मृति, महाकाव्य, पुराण, शास्त्रीय काव्य-नाटक तथा कला-शास्त्रों के आधार पर संस्कृत वाङ्मय में नारी की सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका का अध्ययन किया गया है। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों, अर्थात् मूल ग्रंथों के प्रामाणिक संस्करणों और अनुवादों तथा परवर्ती विद्वानों के विश्लेषणों पर आधारित है। शोध-पत्र में वैदिक ऋषिकाओं और विवाह-सूक्त में नारी की प्रतिष्ठा, उपनिषदों में गार्गी और मैत्रेयी की दार्शनिक उपस्थिति, मनुस्मृति में सम्मान और संरक्षण के द्वंद्व, महाकाव्यों में सीता, द्रौपदी और सावित्री जैसे चरित्र, शास्त्रीय नाटकों में शकुन्तला और वसन्तसेना जैसे पात्र, देवी-उपासना में शक्ति-तत्त्व तथा कला, संगीत और काव्य में नारी की भागीदारी का विश्लेषण किया गया है। साथ ही अल्लेकर के पतन-सिद्धांत और उसकी आलोचना का विवेचन किया गया है। निष्कर्ष यह है कि संस्कृत वाङ्मय में नारी की स्थिति एकरेखीय नहीं, बल्कि कालक्रम, विधा और सामाजिक वर्ग के अनुसार भिन्न-भिन्न रही है, और ग्रंथों में निहित आदर्श तथा सामाजिक यथार्थ के बीच अंतर को ध्यान में रखकर ही उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

कुंजी शब्द: संस्कृत वाङ्मय; नारी; ऋषिका; स्त्रीधन; शक्ति; शकुन्तला; सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका

प्रस्तावना

किसी समाज की सभ्यता का मूल्यांकन इस आधार पर भी किया जाता है कि उसने नारी को कौन-सा स्थान दिया। संस्कृत वाङ्मय में नारी के प्रति दृष्टि को लेकर प्रायः दो परस्पर विरोधी धारणाएँ चलती हैं। एक धारणा यह है कि प्राचीन भारत में नारी को अत्यंत उच्च सम्मान प्राप्त था, जबकि दूसरी धारणा यह है कि संस्कृत ग्रंथ स्त्री को अधीनता और नियंत्रण में रखने के पक्षधर थे। वास्तविकता इन दोनों सरल कथनों से अधिक जटिल है। मनुस्मृति में एक ओर यह कहा गया है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं, यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः (ओलिवेल, 3.56 पर टिप्पणी, 95), और दूसरी ओर यह भी कि स्त्री स्वतंत्रता के योग्य

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

नहीं मानी गई, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (ओलिवेल, 9.3 पर टिप्पणी, 180)। एक ही ग्रंथ में ऐसे दोनों कथन इस जटिलता का स्पष्ट उदाहरण हैं।

संस्कृत वाङ्मय का विस्तार वैदिक संहिताओं से लेकर पुराणों, शास्त्रीय काव्यों, नाट्य-साहित्य और कला-शास्त्रों तक है, और इसका रचना-काल सहस्राब्दियों में फैला है। इस सुदीर्घ परंपरा में नारी की स्थिति के बारे में सामान्यीकरण कठिन है। अल्तेकर ने अपने क्लासिक अध्ययन में हिंदू सभ्यता में नारी की स्थिति का कालक्रमिक विवेचन करते हुए माना कि वैदिक काल में नारी की स्थिति अपेक्षाकृत उच्च थी और बाद की शताब्दियों में उसमें गिरावट आई (अल्तेकर, 1)। इस मत को आगे चलकर आलोचकों ने चुनौती दी है, जिसकी चर्चा इस शोध-पत्र में की गई है।

नारी की भूमिका को सामाजिक और सांस्कृतिक, दो आयामों में देखा जा सकता है। सामाजिक भूमिका में परिवार, विवाह, संपत्ति, शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठान और राजनीतिक जीवन में उसकी स्थिति आती है। सांस्कृतिक भूमिका में साहित्य-रचना, कला, संगीत, नृत्य, परंपरा-संचरण और देवी-रूप में उसकी प्रतिष्ठा शामिल है। इन दोनों आयामों का अध्ययन संस्कृत वाङ्मय की विविध विधाओं के माध्यम से किया जा सकता है। इस शोध-पत्र का प्रयास यही है।

साहित्य समीक्षा

संस्कृत वाङ्मय में नारी पर अध्ययन की शुरुआत में अल्तेकर का ग्रंथ मानक संदर्भ रहा है, जिसमें शिक्षा, विवाह, संपत्ति, विधवा-स्थिति और सार्वजनिक जीवन जैसे विषयों का विस्तृत विवेचन मिलता है (अल्तेकर, 9)। काणे ने धर्मशास्त्र के इतिहास में विवाह, स्त्रीधन, उत्तराधिकार और स्त्री-आचार से संबंधित विधानों का सूक्ष्म संकलन किया (काणे, 570)। बाद के विद्वानों ने इन निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा की। उमा चक्रवर्ती ने अपने लेख में अल्तेकर की पतन-कथा, जिसमें एक स्वर्ण-युग से क्रमिक अवनति की धारणा है, को चुनौती दी और स्त्री-संबंधों के वर्ग, जाति और राजनीतिक अर्थव्यवस्था से जुड़े पक्षों पर बल दिया (चक्रवर्ती, 44)। कुमकुम रॉय ने प्रारंभिक भारतीय समाजों में स्त्रियों पर अपने अध्ययन में विभिन्न स्रोतों के आधार पर स्त्री-जीवन की विविधता को रेखांकित किया (रॉय, 3)।

वैदिक कर्मकांड में नारी की भूमिका पर स्टेफनी जेमिसन का अध्ययन विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें यज्ञ में यजमान-पत्नी की स्थिति, आतिथ्य और अनुष्ठान में उसकी भागीदारी का विश्लेषण मिलता है (जेमिसन, 30)।

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

जूलिया लेस्ली ने त्र्यम्बकयज्वा के स्त्रीधर्मपद्धति के आधार पर आदर्श हिंदू पत्नी की धारणा का अध्ययन किया और परवर्ती धर्मशास्त्रीय परंपरा में स्त्री-आचार को समझाया (लेस्ली, 15)। देवी-परंपरा के संदर्भ में कोबर्न का देवी-माहात्म्य संबंधी अध्ययन शक्ति-तत्त्व की साहित्यिक और धार्मिक प्रतिष्ठा को समझने के लिए उपयोगी है (कोबर्न, 1)। हिंदी में बलदेव उपाध्याय और कपिलदेव द्विवेदी के वैदिक साहित्य संबंधी ग्रंथ वैदिक ऋषिकाओं और सामाजिक जीवन की जानकारी देते हैं (उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, 210; कपिलदेव द्विवेदी, 130)।

मूल ग्रंथों के लिए ऋग्वेद का डोनिगर-कृत अनुवाद (डोनिगर, 250), उपनिषदों का राधाकृष्णन-कृत संस्करण (राधाकृष्णन, 189), महाभारत का वैन ब्यूटेनन-कृत अनुवाद (वैन ब्यूटेनन, 120), कामसूत्र का डोनिगर और काकर-कृत अनुवाद (डोनिगर और काकर, 15), नाट्यशास्त्र का घोष-कृत संस्करण (घोष, 20), तथा कालिदास, भवभूति, शूद्रक और राजशेखर की कृतियों के प्रामाणिक संस्करणों का उपयोग किया गया है। इन विविध स्रोतों और परवर्ती आलोचनाओं को साथ रखकर नारी की भूमिका का बहुआयामी चित्र प्रस्तुत करना इस शोध का उद्देश्य है।

शोध के उद्देश्य और शोध प्रश्न

इस अध्ययन के उद्देश्य हैं: (i) संस्कृत वाङ्मय की विभिन्न विधाओं में नारी के चित्रण और उसकी भूमिका की पहचान करना; (ii) वैदिक काल की ऋषिकाओं, उपनिषदों की विदुषियों और परवर्ती कवयित्रियों के माध्यम से नारी की बौद्धिक और सांस्कृतिक भूमिका का विश्लेषण करना; (iii) स्मृति-साहित्य में नारी के अधिकारों और सीमाओं का मूल्यांकन करना; (iv) महाकाव्य, पुराण और काव्य-नाटक में नारी-पात्रों की सामाजिक भूमिका को समझना; तथा (v) ग्रंथों में निहित आदर्श और सामाजिक यथार्थ के संबंध पर आलोचनात्मक विचार करना।

शोध-पत्र दो प्रश्नों पर केंद्रित है। प्रथम, संस्कृत वाङ्मय में नारी की सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका के कौन-से रूप दिखाई देते हैं? द्वितीय, इन चित्रणों की ऐतिहासिक व्याख्या में किन सावधानियों की आवश्यकता है?

शोध पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक है तथा पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। मूल संस्कृत ग्रंथों के प्रामाणिक संस्करण, उनके हिंदी तथा अंग्रेज़ी अनुवाद और नारी-विषयक परवर्ती अध्ययन

इसके स्रोत हैं। विश्लेषण कालक्रम और विधा, दोनों के आधार पर किया गया है। अध्ययन की सीमाएँ हैं कि संस्कृत ग्रंथों की तिथि प्रायः विवादित है, अधिकांश ग्रंथ पुरुष-रचित हैं और उनमें स्त्री का चित्रण पुरुष-दृष्टि से हुआ है, साहित्यिक आदर्श और सामाजिक व्यवहार में अंतर हो सकता है, तथा इस आकार के शोध-पत्र में सभी ग्रंथों का समावेश संभव नहीं है। इसलिए निष्कर्षों को प्रवृत्तियों के रूप में देखना चाहिए।

संस्कृत वाङ्मय के स्रोत और अध्ययन की दृष्टि

संस्कृत वाङ्मय में नारी का अध्ययन करते समय स्रोतों की प्रकृति को समझना आवश्यक है। वेद और ब्राह्मण-ग्रंथ अनुष्ठान और स्तुति के ग्रंथ हैं; उपनिषद् दार्शनिक संवाद-ग्रंथ हैं; स्मृतियाँ और धर्मसूत्र विधि और आचार के नियम बताते हैं; महाकाव्य और पुराण कथा और उपदेश की परंपरा हैं; काव्य और नाटक साहित्यिक सृजन हैं; और कामसूत्र, नाट्यशास्त्र जैसे ग्रंथ विशिष्ट विद्याओं के शास्त्र हैं। प्रत्येक विधा नारी को अलग कोण से देखती है। उदाहरण के लिए, स्मृतियाँ यह बताती हैं कि समाज में स्त्री से क्या अपेक्षित था या क्या नियत किया गया, जबकि काव्य-नाटक यह दिखाते हैं कि कवियों ने स्त्री की कैसी छवि गढ़ी।

इन स्रोतों की एक साझा सीमा यह है कि वे मुख्यतः शिक्षित, सवर्ण और प्रायः पुरुष वर्ग द्वारा रचित हैं। इसलिए इनमें श्रमिक, दास, निम्न जातियों की स्त्रियों या सामान्य गृहिणियों की आवाज़ कम सुनाई देती है। कुमकुम रॉय ने स्रोतों की इस सीमा पर ध्यान दिलाते हुए बताया कि विभिन्न प्रकार के स्रोतों का तुलनात्मक पाठ ही स्त्री-जीवन की अधिक विश्वसनीय तस्वीर देता है (रॉय, 3)। विंटरनिज़ ने संस्कृत साहित्य की विधाओं और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ का जो परिचय दिया है, वह इस विधागत दृष्टि का आधार है (विंटरनिज़, 25)। इसी कारण यह शोध-पत्र नारी के चित्रण को आदर्श, विधान और साहित्यिक कल्पना के विभिन्न स्तरों पर देखता है और इन्हें समाज के पूर्ण चित्र के समान नहीं मानता।

वैदिक साहित्य में नारी: ऋषिकाएँ और विवाह-सूक्त

ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की द्रष्टा स्त्रियाँ मानी गई हैं। परंपरा में लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्ववारा, शची पौलोमी, रोमशा और सूर्या सावित्री जैसी ऋषिकाओं के नाम प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेद के सूक्तों में घोषा काक्षीवती और अपाला आत्रेयी के नाम से रचित सूक्त मिलते हैं, जिनमें स्वास्थ्य, विवाह और व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी प्रार्थनाएँ हैं (डोनिगर, 250)। इसका महत्त्व यह है कि वैदिक मंत्र-रचना के क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी की परंपरा स्वीकार

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

की गई थी। कपिलदेव द्विवेदी और बलदेव उपाध्याय ने वैदिक ऋषिकाओं का परिचय देते हुए इसे वैदिक समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रमाण माना है (कपिलदेव द्विवेदी, 130; उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, 210)।

वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा के संबंध में अल्तेकर ने ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू की परंपरा का उल्लेख किया है: ब्रह्मवादिनी वे विदुषी स्त्रियाँ थीं जो आजीवन वेद-अध्ययन में लगी रहती थीं, जबकि सद्योवधू विवाह से पूर्व कुछ काल तक अध्ययन करने वाली स्त्रियाँ थीं (अल्तेकर, 9)। उपनयन के संबंध में भी शुरुआती काल में स्त्रियों के लिए इसकी परंपरा होने की चर्चा मिलती है। इस विवरण के आधार पर अल्तेकर ने माना कि वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा का प्रचलन था। परंतु चक्रवर्ती ने यह प्रश्न उठाया कि ये साक्ष्य किस सीमा तक व्यापक सामाजिक यथार्थ को दर्शाते हैं और क्या वे केवल अभिजात वर्ग तक सीमित थे (चक्रवर्ती, 44)।

ऋग्वेद के दशम मंडल का विवाह-सूक्त और अथर्ववेद के विवाह-संबंधी सूक्त वैदिक विवाह की संस्कार-विधि और वधू की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। विवाह-सूक्त में नववधू को आशीर्वाद दिया गया है कि वह श्वसुर, सास, ननद और देवों के बीच सम्राज्ञी बने: सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव (डोनिगर, 255)। इसमें वधू के लिए गृह-स्वामिनी की प्रतिष्ठा की कामना व्यक्त हुई है। अथर्ववेद के विवाह-सूक्त भी इसी प्रकार दांपत्य-जीवन और गृहस्थ-धर्म का आदर्श प्रस्तुत करते हैं (व्हिटनी, 730)।

वैदिक अनुष्ठान में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य मानी गई। तैत्तिरीय ब्राह्मण के वचन के अनुसार जो अपत्नीक है वह यज्ञ करने के योग्य नहीं: अयज्ञो वा एष योऽपत्नीकः। इस आधार पर पत्नी को सहधर्मचारिणी कहा गया, अर्थात् धार्मिक कर्म में समान भागीदार। जेमिसन ने यज्ञ में यजमान-पत्नी की भूमिका का विश्लेषण करते हुए बताया कि वह केवल दर्शक नहीं, अनुष्ठान के कुछ चरणों की सक्रिय भागीदार थी, यद्यपि यह भागीदारी पति के अधीनस्थ ढाँचे में निर्धारित थी (जेमिसन, 30)। यह द्वैत वैदिक नारी की स्थिति की विशेषता है: अनुष्ठान में अनिवार्यता और सामाजिक व्यवस्था में अधीनस्थता, दोनों एक साथ मौजूद थीं।

उपनिषदों में नारी: गार्गी और मैत्रेयी

उपनिषद् काल में नारी की बौद्धिक उपस्थिति के उदाहरण बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलते हैं। राजा जनक की सभा में गार्गी वाचक्वनी ने ऋषि याज्ञवल्क्य से ब्रह्मविद्या से संबंधित गंभीर प्रश्न किए। आरंभ में वह एक के बाद एक प्रश्न पूछकर अत्यंत गहन विषय तक पहुँचती है, और जब वह अतिप्रश्न की ओर बढ़ती है तब याज्ञवल्क्य उसे सावधान करते हैं कि अधिक प्रश्न मत करो। यह प्रसंग यह दर्शाता है कि दार्शनिक शास्त्रार्थ की

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

सभा में स्त्री की उपस्थिति स्वीकार्य थी, और साथ ही शास्त्रार्थ की सीमाओं का भी संकेत देता है (राधाकृष्णन, 189)।

याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी मैत्रेयी का संवाद उपनिषदों की सर्वाधिक प्रसिद्ध दार्शनिक वार्ताओं में है। जब याज्ञवल्क्य संन्यास के लिए गृहत्याग करते हुए अपनी संपत्ति दोनों पत्नियों में बाँटने की इच्छा प्रकट करते हैं, तब मैत्रेयी पूछती है कि क्या सारी पृथ्वी धन से भर जाने पर भी वह अमर हो सकेगी। उत्तर नकारात्मक मिलने पर वह कहती है: येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्, अर्थात् जिससे मैं अमर न होऊँ, उसका मैं क्या करूँगी (राधाकृष्णन, 197)। इस कथन में भौतिक संपत्ति पर आत्म-ज्ञान को वरीयता देने वाली स्त्री का दार्शनिक आत्मबोध प्रकट होता है। इन प्रसंगों के आधार पर उपाध्याय ने उपनिषद् काल की विदुषी स्त्रियों की परंपरा को रेखांकित किया है (उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, 85)।

हालाँकि इन प्रसंगों की व्याख्या में सावधानी आवश्यक है। जेमिसन और रॉय जैसे अध्येताओं का संकेत है कि गार्गी और मैत्रेयी जैसे उदाहरण अपवाद-स्वरूप हो सकते हैं और संपूर्ण समाज की स्त्रियों की स्थिति का सामान्यीकरण नहीं हैं (जेमिसन, 30; रॉय, 3)। फिर भी इन चरित्रों का साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्त्व इस बात में है कि वे भारतीय स्मृति में स्त्री-विद्वत्ता के प्रतीक के रूप में आज भी प्रतिष्ठित हैं।

स्मृति-साहित्य में नारी: सम्मान और नियंत्रण का द्वंद्व

धर्मशास्त्र और स्मृति-साहित्य में नारी के संबंध में सर्वाधिक जटिल और विरोधाभासी सामग्री मिलती है। मनुस्मृति में एक ओर नारियों के सम्मान का आग्रह है कि जिस कुल में नारियाँ दुःखी रहती हैं वह शीघ्र नष्ट हो जाता है और जहाँ वे सुखी रहती हैं वह कुल उन्नति करता है। इसी क्रम में यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: कहा गया (ओलिवेल, 3.56 पर टिप्पणी, 95)। दूसरी ओर, मनुस्मृति में स्त्री के आजीवन संरक्षण का विधान है: बाल्यावस्था में पिता, यौवन में पति और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करें, और स्त्री स्वातंत्र्य के योग्य नहीं मानी गई (ओलिवेल, 9.3 पर टिप्पणी, 180)। इस प्रकार सम्मान के साथ-साथ नियंत्रण और निर्भरता का सिद्धांत भी प्रतिपादित हुआ।

स्त्रीधन का विधान स्मृति-साहित्य में स्त्री की आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण पक्ष है। मनु ने छह प्रकार के स्त्रीधन का उल्लेख किया है, जिनमें विवाह के समय अग्नि के समक्ष दिया गया धन, विदाई के समय मिला धन, स्नेहवश दिया गया धन और माता-पिता, भाई तथा पति से मिले उपहार शामिल हैं (ओलिवेल, 9.194 पर टिप्पणी,

195)। काणे ने स्त्रीधन के विकास और उस पर स्त्री के अधिकार की विस्तृत विवेचना की है (काणे, 570)। इस विधान से स्त्री को संपत्ति के सीमित स्वामित्व की मान्यता मिली, किंतु उस पर पति और परिवार का नियंत्रण भी कई स्थितियों में बना रहा। इसलिए स्त्रीधन को स्त्री की आर्थिक सुरक्षा का साधन और साथ ही पितृसत्तात्मक संरचना के भीतर दी गई सीमित स्वायत्तता, दोनों रूपों में पढ़ा जा सकता है।

अल्तेकर के अनुसार लगभग ईसा पूर्व आठवीं-छठी शताब्दी से आरंभ हुई प्रक्रिया में नारी की स्थिति क्रमशः गिरी। इसके कारणों में उन्होंने उपनयन और वेद-अध्ययन के अधिकार के लोप, विवाह की आयु में कमी, सामाजिक-धार्मिक परिवर्तनों और स्त्री-शिक्षा के ह्रास का उल्लेख किया (अल्तेकर, 25)। इस मत ने दीर्घकाल तक नारी-इतिहास की समझ को प्रभावित किया। परंतु उमा चक्रवर्ती ने इसे अल्तेकरवादी प्रतिमान कहकर चुनौती दी और तर्क दिया कि वैदिक काल को स्वर्ण-युग मानना और उसके बाद एकरेखीय पतन की कल्पना ऐतिहासिक साक्ष्यों की अति-सरलीकृत व्याख्या है, क्योंकि स्त्रियों की स्थिति वर्ग, जाति और आर्थिक संरचनाओं से तय होती रही (चक्रवर्ती, 44)।

इस बहस से शोध-पद्धति के लिए यह शिक्षा मिलती है कि संस्कृत ग्रंथों में उपलब्ध साक्ष्य को सामाजिक संदर्भ में पढ़ा जाए। रॉय के अध्ययन से भी यही संकेत मिलता है कि प्रारंभिक भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति में क्षेत्रीय और वर्गीय विविधताएँ थीं (रॉय, 3)। लेस्ली का स्त्रीधर्मपद्धति पर अध्ययन दिखाता है कि परवर्ती परंपरा में पतिव्रता-धर्म का आदर्श किस प्रकार विस्तार से गढ़ा गया और स्त्री से अपेक्षित आचरण के नियम कितने सुस्पष्ट हो गए (लेस्ली, 15)। इन अध्ययनों को साथ रखने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि नारी की स्थिति में उतार-चढ़ाव आए, किंतु उसे सीधी गिरावट कहना भ्रामक है।

महाकाव्य और पुराणों में नारी: सीता, द्रौपदी, सावित्री और देवी

रामायण और महाभारत में नारी-पात्र भारतीय सांस्कृतिक स्मृति के स्थायी प्रतिमान बन गए हैं। रामायण की सीता धैर्य, निष्ठा और आत्मसम्मान की मूर्ति हैं। वे राम के साथ वनवास स्वीकार करती हैं, रावण की बंदी बनकर अशोक वाटिका में भी अपने संकल्प पर डटी रहती हैं, और अंततः उत्तरकांड में अपने आत्मसम्मान की रक्षा हेतु पृथ्वी में समा जाती हैं। इस प्रकार सीता का चरित्र एक ओर पतिव्रता-आदर्श का प्रतीक है और दूसरी ओर अन्याय के विरुद्ध मौन-प्रतिरोध का भी, और इसी कारण आज भी उसकी बहुविध व्याख्याएँ होती रही हैं (वाल्मीकि, उत्तरकांड, 310)।

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

महाभारत में द्रौपदी का चरित्र अत्यंत प्रखर है। कौरव-सभा में अपमान के समय वह सभासदों से धर्म-संबंधी प्रश्न पूछती है कि जिस व्यक्ति ने स्वयं को हार दिया हो, क्या वह उसे दाँव पर लगा सकता था। यह प्रश्न उस समय के पुरुष-प्रधान सभा-जगत को नैतिक चुनौती देता है (वैन ब्यूटेनन, 120)। सावित्री-सत्यवान की कथा में सावित्री अपनी बुद्धि, निष्ठा और संवाद-कौशल से यमराज को प्रभावित कर पति के प्राण लौटा लाती है, और कुन्ती, गांधारी तथा सुलभा जैसे चरित्र स्त्री की राजनीतिक, नैतिक और दार्शनिक उपस्थिति के विविध रूप प्रस्तुत करते हैं। महाभारत की सुलभा संन्यासिनी के रूप में राजा जनक से दार्शनिक शास्त्रार्थ करती है (वैन ब्यूटेनन, 480)। महाकाव्यों की स्त्रियाँ केवल आदर्श पत्नी या माता नहीं, बल्कि निर्णय, प्रश्न और प्रतिरोध की क्षमता वाले चरित्र भी हैं।

पुराणों में नारी का सबसे उच्च रूप देवी के रूप में स्थापित हुआ। मार्कण्डेय पुराण के अंतर्गत देवी-माहात्म्य, अर्थात् दुर्गा सप्तशती, में देवी को आदि शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जिसने देवताओं की संयुक्त शक्ति से प्रकट होकर महिषासुर और अन्य असुरों का संहार किया। इस ग्रंथ की स्तुति में कहा गया है: या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः (कोबर्न, 55)। यहाँ शक्ति सृष्टि का सर्वोच्च तत्त्व है और स्त्री-रूप में पूजित है। देवी-उपासना की इस परंपरा ने नारी-तत्त्व को सांस्कृतिक और धार्मिक गरिमा प्रदान की। परंतु पुरातन-संदर्भ में यह प्रश्न भी उठता है कि देवी की पूजा और वास्तविक स्त्री की सामाजिक स्थिति में कितना संबंध था। यही आदर्श और यथार्थ का वह अंतर है जिसकी ओर इस शोध-पत्र में बार-बार ध्यान दिलाया गया है (चक्रवर्ती, 44)। कैथरीन यंग ने हिंदू परंपरा में स्त्री के वैदिक, धर्मशास्त्रीय और देवी-परंपरा संबंधी विविध रूपों का सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए इसी बहुलता की ओर संकेत किया है (यंग, 59)।

शास्त्रीय काव्य और नाटक में नारी

शास्त्रीय संस्कृत साहित्य में नारी-पात्रों की विविधता उल्लेखनीय है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् की शकुन्तला प्रकृति के बीच पली सहज, स्नेहमयी युवती है, जो प्रेम में स्वयं निर्णय लेती है और गांधर्व विवाह करती है। परंतु जब दुष्प्रति अपनी सभा में उसे पहचानने से इनकार करता है, तब वह स्वाभिमान के साथ उसके आचरण की भर्त्सना करती है और अपनी बात न्यायपूर्ण भाषा में रखती है (काले, 150)। इस प्रकार शकुन्तला का चरित्र निश्चलता और आत्मसम्मान, दोनों का संयोजन है। भवभूति के उत्तररामचरित में सीता का परित्याग

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

और उनकी पीड़ा करुण रस के गहनतम रूप में चित्रित हुई है, तथा आत्रेयी जैसे पात्र शिक्षा-ग्रहण करती स्त्री की झलक देते हैं (काणे, भवभूति, 40)।

शूद्रक के मृच्छकटिक में वसन्तसेना एक गणिका, अर्थात् नगर-वधू है, परंतु उसे गरिमा, उदारता और प्रेम की क्षमता से युक्त चरित्र के रूप में दिखाया गया है। निर्धन ब्राह्मण चारुदत्त के प्रति उसके प्रेम में सामाजिक पदानुक्रम की सीमाएँ टूटती हैं, और नाटक का सुखद अंत वसन्तसेना को सम्मानित गृहिणी का दर्जा देकर होता है (राइडर, 90)। इस नाटक में स्त्री-चरित्र के माध्यम से वर्ग और सामाजिक मान्यताओं की आलोचना भी दिखाई देती है।

शास्त्रीय संस्कृत नाटकों में एक रोचक भाषागत परंपरा भी दिखती है। नाट्यशास्त्र की परिपाटी के अनुसार प्रायः उच्च वर्ग के पुरुष पात्र संस्कृत बोलते हैं, जबकि स्त्री-पात्र और अन्य कुछ वर्गों के पात्र प्राकृत भाषाएँ बोलते हैं (घोष, 20)। यह भेद सामाजिक पदानुक्रम का सांकेतिक रूप है, और विद्वानों ने इसे संस्कृत नाट्य-परंपरा में स्त्री की भाषिक स्थिति के रूप में देखा है। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि इन नाटकों में स्त्री-पात्र अपनी भाषा में गहरे भाव, तर्क और हास्य व्यक्त करते हैं, और उनके संवाद नाटक की संवेदना के केंद्र में रहते हैं। कीथ ने संस्कृत नाटक में स्त्री-चरित्रों के योगदान की चर्चा की है (कीथ, 145)।

सांस्कृतिक भूमिका: कला, संगीत, काव्य-रचना और विदुषी स्त्रियाँ

नारी की सांस्कृतिक भूमिका संगीत, नृत्य और कलाओं में विशेष रूप से दिखाई देती है। नाट्यशास्त्र में नाट्य-प्रयोग के अंतर्गत स्त्री-अभिनेत्रियों की भूमिका मानी गई है, और नृत्य, गायन और वाद्य को नाट्य-कला के अभिन्न अंग के रूप में विवेचित किया गया है (घोष, 25)। कामसूत्र में चौंसठ कलाओं की सूची दी गई है और कहा गया है कि स्त्रियों को भी इनका अध्ययन करना चाहिए। इनमें गायन, वादन, नृत्य, चित्रकला, काव्य-रचना, पुष्प-सज्जा और अन्य अनेक कौशल शामिल हैं (डोनिगर और काकर, 15)। इस विवरण से पता चलता है कि कम से कम नागरिक अभिजात वर्ग में स्त्री के लिए कलाओं की शिक्षा को वांछनीय माना जाता था।

संस्कृत साहित्य में महिला कवयित्रियों की उपस्थिति के प्रमाण भी मिलते हैं। संस्कृत सुभाषित-संग्रहों में विज्जिका, शीलाभट्टारिका और मारुला जैसी कवयित्रियों के पद संकलित हैं। शीलाभट्टारिका का एक श्लोक अलंकार-शास्त्र के ग्रंथों में उदाहरण के रूप में उद्धृत मिलता है। मध्यकाल में विजयनगर के संदर्भ में गंगादेवी

ने मधुरा-विजयम् नामक काव्य की रचना की और तिरुमलांबा ने वरदाम्बिका-परिणय की रचना की, जिनसे संस्कृत में राजसभा की विदुषी स्त्रियों की परंपरा का पता चलता है (कीथ, 145)।

काव्यशास्त्री राजशेखर ने काव्यमीमांसा में स्पष्ट रूप से कहा है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान कवि हो सकती हैं, क्योंकि संस्कार आत्मा में समवेत होता है और वह स्त्री या पुरुष के भेद की अपेक्षा नहीं रखता (राजशेखर, 54)। राजशेखर ने अपनी पत्नी अवंतिसुंदरी के काव्य-मत का भी उल्लेख किया है, जो यह दर्शाता है कि कम से कम बौद्धिक और साहित्यिक अभिजात वर्ग में विदुषी स्त्री की प्रतिष्ठा थी। इस कथन का महत्त्व इसलिए अधिक है कि यह किसी शास्त्रीय काव्य-चिंतक द्वारा स्त्री की रचनात्मक क्षमता की सैद्धांतिक स्वीकृति है। परंतु यहाँ भी यह प्रश्न बना रहता है कि कवयित्रियों की संख्या अपेक्षाकृत सीमित क्यों रही और उनकी रचनाओं के संरक्षण का क्या स्वरूप रहा, जो शिक्षा और अवसर की असमान उपलब्धता की ओर संकेत करता है (रॉय, 3)।

सामाजिक भूमिका: परिवार, अर्थ, विधवा-स्थिति और शिक्षा

परिवार नारी की सामाजिक भूमिका का केंद्रीय क्षेत्र था। गृहिणी के रूप में उसकी भूमिका गृह-प्रबंध, अतिथि-सत्कार, संतान-पालन और धार्मिक कर्तव्यों के निर्वहन से जुड़ी थी। मातृत्व को विशेष आदर प्राप्त था। विवाह-संस्था के भीतर सहधर्मिणी की अवधारणा और यज्ञ में पत्नी की अनिवार्यता नारी की धार्मिक भागीदारी को स्वीकार करती थी (जेमिसन, 30)। परंतु परवर्ती धर्मशास्त्र में पतिव्रता-धर्म के विस्तृत आदर्श ने उसकी भूमिका को पति के प्रति निष्ठा के भीतर अधिक परिभाषित कर दिया (लेस्ली, 15)।

विधवा की स्थिति सामाजिक दृष्टि से सबसे संवेदनशील प्रश्नों में से एक है। ऋग्वेद के अंत्येष्टि-सूक्त में विधवा को चिता के पास से उठकर जीवित संसार में लौटने का आह्वान मिलता है, जिसे कई विद्वान उस समय की अपेक्षाकृत उदार दृष्टि का संकेत मानते हैं (डोनिगर, 45)। परवर्ती काल में विधवा के जीवन पर कड़े प्रतिबंधों और सती-प्रथा के सामाजिक प्रचलन का विकास हुआ, जिसकी विधिक और सामाजिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण काणे ने किया है (काणे, 624)। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत ग्रंथों में एक ही विषय पर अलग-अलग कालों की भिन्न मान्यताएँ दर्ज हैं, और इन्हें एक समरूप परंपरा नहीं माना जा सकता।

शिक्षा के क्षेत्र में पहले वर्णित वैदिक ब्रह्मवादिनी परंपरा के बाद औपचारिक वेदाध्ययन में स्त्रियों की भागीदारी कम होती दिखती है, जिसे अल्लेकर ने स्त्री-स्थिति में गिरावट का प्रमुख कारण माना (अल्लेकर, 25)।

National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and Multidisciplinary Research (NCETAHMR)

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

इसके बावजूद कला, संगीत और काव्य जैसे क्षेत्रों में स्त्री-शिक्षा की परंपरा बनी रही, जैसा कि कामसूत्र की चौंसठ कलाओं और राजशेखर के कथन से संकेत मिलता है (डोनिगर और काकर, 15; राजशेखर, 54)। आर्थिक भूमिका के संदर्भ में स्त्रीधन के अधिकार के अतिरिक्त कृषि, शिल्प और सेवा कार्यों में निम्न वर्गों की स्त्रियों के श्रम की उपस्थिति के अप्रत्यक्ष संकेत मिलते हैं, यद्यपि संस्कृत वाङ्मय में उनकी आवाज़ बहुत कम सुनाई देती है (रॉय, 3)।

आलोचनात्मक विमर्श: आदर्श और यथार्थ

संस्कृत वाङ्मय में नारी के अध्ययन में कुछ आलोचनात्मक प्रश्न बार-बार उठते हैं। पहला प्रश्न स्वर्ण-युग की धारणा का है। वैदिक या प्राचीन काल को नारी के लिए आदर्श युग मानना या उसके बाद सिर्फ गिरावट देखना, दोनों ही अतिसरलीकरण हो सकते हैं, जैसा कि चक्रवर्ती ने रेखांकित किया (चक्रवर्ती, 44)। दूसरा प्रश्न स्रोतों के प्रकार का है। ग्रंथों में नारी के प्रति सम्मान के कथन और नियंत्रण के कथन साथ-साथ मिलते हैं, और उन्हें विधिक नियम, आदर्श या साहित्यिक कल्पना के रूप में अलग-अलग पढ़ना आवश्यक है (ओलिवेल, 3.56 पर टिप्पणी, 95; 9.3 पर टिप्पणी, 180)। तीसरा प्रश्न रचयिता का है। अधिकांश ग्रंथ पुरुष-रचित हैं, इसलिए उनमें स्त्री का चित्रण प्रायः पुरुष-दृष्टि से है, और स्त्री की अपनी आवाज़ बहुत कम सुनाई देती है।

चौथा प्रश्न वर्ग और जाति का है। ग्रंथों में प्रतिबिंबित स्त्री-जीवन का बड़ा हिस्सा अभिजात और सवर्ण वर्ग का है। निम्न वर्गों की स्त्रियों के अनुभव अधिक सीमित रूप में मिलते हैं (रॉय, 3)। पाँचवाँ प्रश्न व्याख्या का है। एक ही चरित्र, जैसे सीता, की पतिव्रता-आदर्श या प्रतिरोध की प्रतीक के रूप में अलग-अलग व्याख्याएँ संभव हैं। इन सब आलोचनात्मक पक्षों के बावजूद संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसमें नारी की भूमिका के बारे में विमर्श के अनेक बीज मौजूद हैं, और आधुनिक विमर्श भी इन्हीं की पुनर्व्याख्या करता रहा है।

निष्कर्ष

इस शोध-पत्र में संस्कृत वाङ्मय में नारी की सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका का अध्ययन किया गया। वैदिक साहित्य में ऋषिकाओं की उपस्थिति और विवाह-सूक्त में वधू को सम्राज्ञी की प्रतिष्ठा की कामना नारी के सम्मान की ओर संकेत करती है; उपनिषदों में गार्गी और मैत्रेयी दार्शनिक विमर्श में भागीदार स्त्री के उदाहरण हैं; स्मृति-साहित्य में सम्मान और संरक्षण-नियंत्रण का द्वंद्व तथा स्त्रीधन की सीमित आर्थिक स्वायत्तता दिखाई

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

देती है; महाकाव्यों और पुराणों में सीता, द्रौपदी, सावित्री और देवी के रूप में नारी के बहुविध प्रतिमान मिलते हैं; और शास्त्रीय काव्य-नाटक, कला-शास्त्र तथा राजशेखर जैसे काव्य-चिंतक स्त्री की सांस्कृतिक और रचनात्मक भूमिका को स्वीकृति देते हैं।

प्रथम शोध प्रश्न का उत्तर यह है कि संस्कृत वाङ्मय में नारी की भूमिका गृहिणी, माता, सहधर्मिणी, विदुषी, कवयित्री, कलाकार, राजनीतिक व्यक्तित्व और देवी, अनेक रूपों में प्रकट होती है। द्वितीय प्रश्न के संबंध में निष्कर्ष यह है कि इन चित्रणों की व्याख्या में स्वर्ण-युग के मिथक, स्रोतों की पुरुष-दृष्टि, आदर्श और व्यवहार के अंतर तथा वर्ग-जाति की सीमाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। अल्तेकर के पतन-सिद्धांत और उसकी आलोचना से यह स्पष्ट है कि नारी की स्थिति काल, विधा और वर्ग के अनुसार बदलती रही, इसलिए सरल और एकरेखीय निष्कर्ष उचित नहीं। भविष्य में क्षेत्रीय और स्थानीय अभिलेखों, पुरातात्विक साक्ष्यों और निम्न वर्गों की स्त्रियों से जुड़े स्रोतों के साथ संस्कृत ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन से इस विषय को और अधिक समृद्ध किया जा सकता है। संस्कृत वाङ्मय का नारी-विमर्श हमें यह सिखाता है कि परंपरा का मूल्यांकन उसके आदर्शों और उसकी सीमाओं, दोनों को साथ रखकर ही किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उपाध्याय, बलदेव. वैदिक साहित्य और संस्कृति. शारदा मंदिर, वाराणसी, 1958.
2. उपाध्याय, बलदेव. संस्कृत साहित्य का इतिहास. शारदा मंदिर, वाराणसी, 1946 (प्रथम प्रकाशन).
3. द्विवेदी, कपिलदेव. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
4. वाल्मीकि. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण. गीताप्रेस, गोरखपुर (अनेक संस्करण).
5. Altekari, A. S. *The Position of Women in Hindu Civilization: From Prehistoric Times to the Present Day*. Motilal Banarsidass, Banaras, 1938.
6. Chakravarti, Uma. "Beyond the Altekarian Paradigm: Towards a New Understanding of Gender Relations in Early Indian History." *Social Scientist*, vol. 16, no. 8, 1988, pp. 44-52.
7. Coburn, Thomas B. *Devi-Mahatmya: The Crystallization of the Goddess Tradition*. Motilal Banarsidass, Delhi, 1984.
8. Doniger, Wendy, and Sudhir Kakar, translators. *Kamasutra*. Oxford University Press, 2002.
9. Doniger, Wendy, translator. *The Rig Veda: An Anthology*. Penguin Books, 1981.
10. Ghosh, Manomohan, translator. *The Natyasastra*. Asiatic Society, Calcutta, 1950-1961.

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

11. Jamison, Stephanie W. *Sacrificed Wife / Sacrificer's Wife: Women, Ritual, and Hospitality in Ancient India*. Oxford University Press, New York, 1996.
12. Kale, M. R., editor. *The Abhijnanasakuntalam of Kalidasa*. Motilal Banarsidass, Delhi, 1969.
13. Kane, P. V. *History of Dharmasastra*. 5 vols., Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1930-1962.
14. Kane, P. V., editor. *Bhavabhuti's Uttararamacarita*. Motilal Banarsidass, Delhi, 1962.
15. Keith, A. Berriedale. *A History of Sanskrit Literature*. Oxford University Press, 1928.
16. Leslie, Julia. *The Perfect Wife: The Orthodox Hindu Woman according to the Stridharmapaddhati of Tryambakayajvan*. Oxford University Press, Delhi, 1989.
17. Olivelle, Patrick, translator. *The Law Code of Manu*. Oxford University Press, 2004.
18. Radhakrishnan, S. *The Principal Upanishads*. George Allen and Unwin, London, 1953.
19. Rajasekhara. *Kavyamimamsa*. Edited by C. D. Dalal and R. A. Sastry, Gaekwad's Oriental Series, Baroda, 1916.
20. Roy, Kumkum. *Women in Early Indian Societies*. Manohar Publishers, New Delhi, 1999.
21. Ryder, Arthur W., translator. *The Little Clay Cart (Mrcchakatika of Sudraka)*. Harvard University Press, Cambridge, MA, 1905.
22. van Buitenen, J. A. B., translator. *The Mahabharata*. University of Chicago Press, 1973-1978.
23. Whitney, William Dwight, translator. *Atharva-Veda Samhita*. Harvard Oriental Series, vols. 7-8, Harvard University, 1905.
24. Winternitz, Moriz. *A History of Indian Literature*. University of Calcutta, 1927-1933.
25. Young, Katherine K. "Hinduism." *Women in World Religions*, edited by Arvind Sharma, State University of New York Press, Albany, 1987, pp. 59-103.